पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के सिद्धान्त

डॉ. रघुवीर

(डॉ. शशिबाला (drshashibala56@gmail.com), डीन, भारतीय विद्या भवन, दिल्ली
के सौजन्य से प्राप्त डॉ. रघुवीर के लेखों के आधार पर संक्षिप्त लेख)

स्वतन्त्र भारत में शब्द–निर्माण की समस्या

भारत बहुभाषिक देश है। देवनागरी लिपि में हिन्दी को राजभाषा बनाया गया। हिन्दी एक सरल, लचीली एवं प्रगतिशील भाषा है जिसे भारतवर्ष में अधिकतम लोग समझते हैं। लेखक और विषय वस्तु के अनुरूप इसका समवेशी स्वरूप मुखरित होता है। बोलियों, संस्कृत, इंग्लिश, उर्दू के यथोचित शब्द भाषा सुष्ठु बनाते हैं। अब तक शब्द निर्माण साहित्यिक दृष्टि से हुआ। स्वतंत्र भारत में साहित्येतर क्षेत्र में भी शब्द निर्माण आवश्यक है। इस विषय पर कई विद्वानों ने सैद्धान्तिक विचार रखे। 1961 में प्रोफ. डी. एस. कोठारी जी की अध्यक्षता में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग (CSTT) का गठन हुआ।

आचार्य रघुवीर ने 1965 में प्रकाशित लेखों में हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली को भारतीय पारिभाषिक शब्दावली नाम दिया है क्योंकि वह अधिकांश अन्य भारतीय भाषाओं में भी प्रयुक्त हो सकती है। जितने अधिक शब्दों का प्रयोग किसी भाषा में होगा वह उतनी ही समृद्ध समझी जाएगी। अंग्रेजी को अपनी इस विशेषता के कारण संसार की भाषाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विभिन्न शब्द, अर्थ और भाव–व्यंजना के सूचक हैं।

आचार्य रघुवीर जी के अनुसार भाषा एक महान् समुद्र के समान है। इस समुद्र की तह में पैठने वालों को शब्द–रत्नों की प्राप्ति हो सकती है। संसार सतत ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति करता है और उस के साथ उसे उन विषयों पर नवीन साहित्य के सृजन हेतु नये–नए शब्दों की आवश्यकता होती है। नव–निर्मित शब्द उस आवश्यकता को पूर्ण करते हैं।

स्वतन्त्र भारत के निवासियों के लिए बहुत काल पश्चात् आज अवसर आया है कि वे स्वतन्त्र रूप से अपने ज्ञान और साहित्य के संवर्धन हेतु प्रयत्न करने की चेष्टा करें। यही समय भाषा के क्षेत्र में अधिक से अधिक खोज का है। अपनी भाषाओं को समृद्ध करने हेतु इस समय सजग और सतर्क रहने की बड़ी आवश्यकता है ताकि हम अपनी पुरातन संस्कृति के अनुरूप नए शब्दों का निर्माण कर सकें। यहां यह स्मरण रखने की बात है कि किसी भी भाषा के प्रयोग करने वाले उसके कुछ सहस्र शब्दों का ही प्रयोग सामान्य रूप से करते हैं, पर उसी के विशिष्ट प्रयोग करने वाले लोग लाखों शब्दों का व्यवहार करते हैं। जितने अधिक शब्दों का प्रयोग किसी भाषा में होता है वह उतनी ही समृद्ध समझी जाती है। अंग्रेजी को अपनी इस विशेषता के कारण संसार की भाषाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। विभिन्न शब्द अर्थ और भाव–व्यंजना के सूचक हैं।

प्रत्येक भाषा में रूढ़ि, यौगिक और योगरूढ़ि – तीन प्रकार के शब्द होते हैं। रूढि शब्द क्लिष्ट और अन्य दो सरल होते हैं। लोगों द्वारा प्रयोग के कारण भाषा के कुछ शब्द परिचित और कुछ अपरिचित हो जाते हैं। परिचित शब्दों के प्रयोग को हम सरल तथा दूसरे शब्दों को क्लिष्ट मानते हैं। यह ध्यान रखने की बात है कि साधारण लेखकों के परिचित शब्दों की संख्या पांच सहस्त्र से अधिक नहीं होती। यदि हम अपरिचित शब्दों को क्लिष्ट समझ कर त्याज्य मान लेगें तो परिचित (सरल) शब्दों की संख्या बढ़ने के स्थान पर घटेगी ही। इस मनोवृत्ति का परिणाम होगा कि भाषा की संवर्धन–शक्ति विनष्ट हो जाएगी और वह हमारे बढ़ते हुए ज्ञान

को व्यक्त करने में सर्वथा अयोग्य रहेगी। सरल शब्दों के ज्ञान के आधार पर हम अपने को किसी भाषा का पण्डित समझ बैठते हैं और अपरिचित शब्द का प्रयोग हमारे पाण्डित्य को ठेस पहुंचाता है। आजकल यह मनोवृत्ति हिन्दी–भाषियों में अधिक बलवती हो रही है। बड़े दुःख के साथ यहां यह इंगित करना पड़ता है कि जब अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त नवीन–नवीन शब्दों को हम देखते हैं तब हम यह कहते सुनाई नहीं देते कि अमुक प्रयोग इस प्रकार क्यों किया गया है। उस समय तो हम तुरन्त अंग्रेजी के अच्छे–से–अच्छे कोष के पन्ने उलटने में ही अपना गौरव मानते हैं। हमको यह मनोवृत्ति छोड़नी होगी, क्योंकि अब तक जिन शब्दों का हमने निर्माण और गठन किया वे अधिकांश काव्य निर्माण की दृष्टि से ही थे पर अब स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा की गरिमा के अनुरूप ही अगाध शब्द–भण्डार का स्रोत अपने अन्दर से खोज निकालना पड़ेगा। पारिभाषिक शब्दों के निर्माण हेतु संस्कृत भाषा में अनुपम क्षमता है।

नवीन शैली –

नवीन शब्दों के अनुसार ही हमें नवीन रचना शैली से भी नहीं चौंकना चाहिए। यह सब ही जानते हैं कि अब तक हिन्दी की वाक्यरचना शैली सरलता की ओर ही थी। हमारे यहां छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग ही सर्वमान्य रहा है। अब तक शैली का प्राधान्य था और विषय गौण। भविष्य में विषय को प्रधानता देनी होगी न कि शैली को। विभिन्न विषयों की जटिलता और उनकी विशिष्ट परम्परा के कारण हिन्दी में भी हमें लम्बे–लम्बे वाक्यों का प्रयोग करना होगा। हमारे लिए मिश्रित वाक्य में विशेषण तथा क्रियाविशेषण वाक्यांशों का प्रयोग विषय की विशिष्टता के कारण अनिवार्य हो जाएगा।

भारत की प्रान्तीय भाषाओं में जब विशिष्ट शब्दों का व्यवहार किया जाता है तब संस्कृत के शब्द–अनुपात की मात्रा बंगला, उड़िया, असमिया, हिन्दी, गुजराती, मराठी में 80–90 प्रतिशत, दूसरे वर्ग तमिल में 50–60 प्रतिशत तथा तीसरे वर्ग मलयालम (शिष्टभाषा), कन्नड, तेलुगु में 90 प्रतिशत तक हो जाती है।

इससे स्पष्ट है कि भारत की समस्त भाषाओं, उर्दू को छोड़ कर, का शब्द–भण्डार संस्कृत के आधार पर ही है। अतः हमें हिन्दी को देशव्यापी और सर्वमान्य बनाने के लिए संस्कृत का ही आश्रय लेना होगा, तब ही वह राष्ट्रभाषा के पद की गरिमा को निभा सकेगी अन्यथा नहीं। संसार के लिए यह कितने आश्चर्य की बात होगी कि ब्रह्मदेश, स्याम और लंका तो अपनी भाषा की समृद्धि के लिए संस्कृत को आधार बनाना चाहें पर उसकी बड़ी पुत्री हिन्दी ही बलात् अपने को संस्कृत माता से वचिंत रहने का अश्रेयस्कर प्रयास करे।

सर्वमान्यता का प्रश्न

अन्य भाषाओं की भांति भारत की विभिन्न भाषाओं के भी दो रूप साथ–साथ चलते हैं– एक जनसाधारण में और दूसरा साहित्य–निर्माण में प्रयुक्त होने वाला। ज्ञान–विज्ञान तथा वैधानिक साहित्य का निर्माण सदैव समस्त भाषाओं में विशिष्ट शब्दों के आधार पर ही होता है। अब, जब हम अपने संविधान के अनुवाद को सर्वमान्यता दिलाने का प्रयास कर रहे हैं तब हमें अनिवार्य रूप से संस्कृत के तत्सम शब्दों का ही प्रयोग करना समीचीन जान पड़ेगा, क्योंकि देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्य में उन शब्दों का प्रयोग सद्य से होता रहा है। यहां हम यह स्पष्ट कर देना चाहते है कि चालू हिन्दी में हेरफेर करने का हमारा लक्ष्य नहीं। हमें तो एक ऐसे विशिष्ट साहित्य का रूप स्थिर करना है जो सदैव समस्त भाषाओं में विशेष ही रहा है। उस साहित्य को जन–साधारण तक पहुंचाने के लिए हमें टीका और व्याख्या करने का अलग से प्रयास करना होगा, जिसके अनेक रूप होंगे। जिस कोटि और क्षेत्र के लोगों को हमें समझाने की आवश्यकता होगी उसके अनुरूप ही हमें वैसा साधारण साहित्य निर्माण कर प्रचारित करना होगा। उस जन–साहित्य की भाषा का रूप थोड़ा भिन्न और शब्द–भण्डार भी कम ही

होगा। अतः यह परमावश्यक है कि संस्कृत तत्सम शब्दों से विज्ञदेश की विभिन्न भाषाओं के विद्वानों की मान्यता प्राप्त करने के लिए हम राष्ट्रभाषा हिन्दी के विशिष्ट साहित्य में भी संस्कृत तत्सम शब्दों और सामान्य नियमों का अधिक से अधिक प्रयोग करें।।

भारतीय पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के सिद्धान्त

डॉ रघुवीर ने लिखा है – "हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली अधिकांश अन्य भारतीय भाषाओं में भी प्रयुक्त हो सकती है और होगी भी, इसलिए इसको भारतीय नाम से अभिहित करना तथ्य से बहुत दूर नहीं। पिछले 23 वर्षों के कार्य में जिन सिद्धान्तों को हमने नियमित रूप से अपने कार्य का आधार बनाया है उन्हीं का आज हम प्रतिपादन करेंगे।"

पहला सिद्धान्त –

एक शब्द एक ही मुख्य अर्थ का वाही हो अथवा यूं कहें कि प्रत्येक मुख्य अर्थ के लिए एक पृथक् शब्द हो।

दूसरा सिद्धान्त –

प्रत्येक शब्द अन्वर्थ अर्थात् अर्थानुगामी हो। अन्वर्थता हमारी शब्दावली का प्राण है। यथासंभव मुख्य लक्षण अथवा विभेदक गुण के आधार पर शब्द बनाए गए हैं।

तीसरा सिद्धान्त –

असमस्त पद का परिमाण चार अक्षरों से अधिक न हो। जैसे phosphorus के लिए भास्वर। भास्वर में तीन अक्षर है। यदि रोमन लिपि में लिखे हुए अंग्रेजी शब्दों और देवनागरी में लिखे हुए भारतीय पर्यायों पर आप दृष्टिपात करेंगे तो आप पाएंगे कि सामान्यतया भारतीय शब्द थोड़ा स्थान लेते है।

चौथा सिद्धान्त –

जब अंग्रेजी शब्द के एक अथवा अनेक संक्षेप तथा प्रतीक विद्यमान हों तो भारतीय शब्द के भी प्रतीक और संक्षेप एक अथवा अनेक (जैसी भी आवश्यकता हो) होने चाहिए। गणित, रसायन और अन्य विज्ञानों में प्रतीकों और संक्षेपों की पदे–पदे आवश्यकता पड़ती है। इन्हीं की सहायता से सूत्रों (formulae) का निर्माण होता है। रसायन में 92 तत्त्व हैं। इनमें प्रत्येक का प्रतीक आवश्यक है। प्रत्येक प्रतीक विभिन्न होना चाहिए। प्रतीक–निर्माण की सामान्य पद्धति शब्द के आदि अक्षर का प्रयोग है। इसलिए प्रत्येक रसायनिक तत्त्व का प्रारम्भिक अक्षर (syllabe) विभिन्न रखा गया है। यह सम्भावना केवल हमारी भाषा और लिपि में है। अंग्रेजी में तो वर्णमाला के केवल 26 अक्षर है। उनकी लिपि का लेखन–एकक (graphic unit) एक वर्ण है न कि अक्षर (syllable)।

पांचवां सिद्धान्त –

अंग्रेजी के असमस्त पदों का अनुवाद असमस्त पदों से ही किया जाए। समासों अथवा वाक्यों से नहीं। यह नियम बहुत महत्व का है। इसका पालन न करके कुछ लोगों ने जनता के लिए उपहास की अच्छी सामग्री उपस्थित की है। जैसे signal के लिये अग्निरथ–गमन–आगमन–सूचक–लोहा पट्टिका। यह व्याख्या है, शब्द नहीं। इसका अनुवाद तो संकेत है। व्याख्यात्मक अनुवाद नये शब्द को अपरिचित व्यक्ति के समझाने के लिए उपयुक्त हो सकते है किन्तु प्रयोग के लिए वे सर्वथा अनुपयुक्त है। इनको अनुपयुक्त समझाने के लिए हम इनसे व्युत्पन्न शब्दों की ओर आपका ध्यान दिलाते हैं, यदि signal का अनुवाद अग्निरथ–गमन–आगमन–सूचक–लोह–पट्टिका मान लिया जाए तो signaling, signalman आदि का अनुवाद और भी लम्बा और भद्दा हो जाएगा और जब ये शब्द वाक्य में प्रयोग करने होंगे तो उस वाक्य की रचना किस प्रकार से होगी, यह अनुमान करना ही व्याकुलता उत्पन्न कर देता है। अंग्रेजी के एक शब्द का अनुवाद हिन्दी के एक शब्द से ही होना चाहिए– इस सिद्धान्त का जब भी उल्लंघन किया जाएगा तभी कष्ट होने की संभावना रहेगी।

छठा सिद्धान्त –

यथाशक्य उपसर्गों का अनुवाद उपसर्गों से तथा

प्रत्ययों का प्रत्ययों से करना चाहिए। उदाहरण के लिए peri के लिए परि। perimeter परिमाप। sub के लिए अनु। sub-genus अनु–प्रजाति। con के लिए सं। condense संघनन। ab के लिए अप। ab-rade अप–घर्षण। anti के लिए प्रति। antimere = प्रति–खण्ड। eu के लिए सु। eu-pepsia सुपचन। कले के लिए दुस्। dyspnea दुश्श्वसन, इत्यादि।

अब प्रत्ययों को लीजिए –

phosph से ate, ated, atic, atithi, ation, ide, in, onic आदि अनेक प्रत्यय एक–एक दो–दो करके लगाए जाते हैं। phosph का अनुवाद भास्व, ate का ईय, phosphate भास्वीय, phosphated भास्वीयित, phosphatic भास्वीयिक, phosphatide भास्वीयेय, phosphation भास्वीयन, phosphide भास्वेय, phosphin भास्वि, phosphatic भास्वियिक, phosphonic भास्वियिक, इत्यादि।

सातवां सिद्धान्त –

जब अंग्रेजी शब्द समस्त हो तो इसका विश्लेषण करके सार्थक अंगों का अलग–अलग अनुवाद करके उनके सहयोग से हिन्दी के शब्द का निर्माण किया जाए। जैसे– centrifugal केन्द्रापग, केन्द्र से अपगमन करने वाला, centri केन्द्र, fugal अपग। centri petal केन्द्राभिग, केन्द्र की ओर अभिगमन करने वाला। tetramerous चतुरवयव, tetr चर्तु merous अवयव। Xanthophyll पर्णपीत, Xantho पीत, Phyll पर्ण।

आठवां सिद्धान्त –

यदि एक शब्द से अंग्रेजी में अनेक शब्दों की प्राप्ति होती हो तो उन सब व्युत्पन्न शब्दों की व्यवस्था होनी चाहिए। शब्द विकास की दृष्टि से इस सिद्धान्त का पालन नितान्त आवश्यक है। जैसे–

Law	विधि
lawful	विधिवत्
Lawless	विधिहीन
Lawlessness	विधिहीनता
legal	वैध
illegal	अवैध
legislation	विधान
legislative	विधायी
legislator	विधायक
legislatable	विधेय
illegislatable	अविधेय

नवां सिद्धान्त –

शब्दों का अकेले–अकेले अनुवाद नहीं किया जाना चाहिए। पहले शब्द के सम्बन्धी पदों का संग्रह किया जाना चाहिए, फिर उनके समासों का। सम्बन्धी शब्दों में व्याकरण अथवा अर्थों द्वारा स्थापित दोनों प्रकार के सम्बन्धों का सन्निवेश है। व्याकरण–सम्बन्ध का उदाहरण–

1. Aurum स्वर्ण, auric स्वर्णिक, aurous स्वर्णय।
2. Absorb प्रचूषण, absorbancy प्रचूषत्व, absorbed प्रचूषित, absorber प्रचूषक, absorptive प्रचूषी
3. Acid अम्ल, acidic अम्लिक, acidiant अम्लकर, acidification अम्लन, acidifier अम्लक।

अब अर्थ द्वारा सम्बद्ध कुछ शब्दों को लीजिए–

1. adductor muscle उपचालक पेशी, abductor muscle अपचालक पेशी।
2. afferent अभिवाही, efferent अपवाही।
3. superintendent अधीक्षक, Inspector निरीक्षक।
4. Motion प्रस्ताव, resolution संकल्प, bill विधेयक, act अधिनियम।
5. revolution क्रान्ति, mutiny सैन्यद्रोह, rebellion विद्रोह।

6. right अधिकार, authority प्राधिकार, prerogative परमाधिकार, privilege विशेषधिकार।

समासों की संख्या तो कभी–कभी सैकड़ों और सहस्रों तक पहुंचती है।

दसवां सिद्धान्त –

नए विचारों के लिए नए प्रत्ययों का निर्माण। इन प्रत्ययों का आविष्कार कल्पना के आधार पर नहीं किया जाता किन्तु वास्तविक शब्दों के संक्षेपों को प्रत्यय के रूप में प्रयोग किया जाता है। यह पद्धति संसार की अन्य भाषाओं में भी विद्यमान है। अंग्रेजी में तो इसका प्रतिदिन अधिकाधिक प्रयोग हो रहा है। aurum, ferrum, argentum आदि के अन्तिम भाग um को रसायनशास्त्र में धातुवाची तत्त्वों के द्योतन करने के लिए प्रत्यय के रूप में प्रयोग किया गया है, जैसे alumen अर्थात् फिटकरी से um प्रत्यय लगाकर aluminium रसायनिक तत्त्व का नाम रखा गया है। इन नए प्रत्ययों की संख्या बहुत थोड़ी है। नितान्त आवश्यकता पड़ने पर हमने इस पद्धति का प्रयोग किया है। इन रसायनिक धातुवाची तत्त्व–नामों के लिए स्वयं धातु शब्द का अन्त्य भाग धातु प्रयोग किया है। alumen का अनुवाद स्फटी, अर्थात् फिटकरी। के आगे धातु प्रत्यय लगाने पर सफट धातु शब्द प्राप्त होता है।

ग्यारहवां सिद्धान्त –

जो विचार और पदार्थ प्राचीन समय से हमारी भाषाओं में चले आए हैं, उनका अन्वेषण करना हमारा पहिला कर्त्तव्य है। नए शब्द बनाने के स्थान में प्राचीन शब्दों का प्रयोग अधिक उपकारी है। भारत का प्राचीन साहित्य संस्कृत, पाली और प्राकृत में निहित है। इस साहित्य की विशालता, विभिन्नता और गम्भीरता का अनुमान करना सरल नहीं। इनके अतिरिक्त उत्तर और दक्षिण को आधुनिक भाषाओं में भी अच्छा साहित्य विद्यमान है। इनके शब्दों का निरीक्षण करना हमारे लिए लाभकारी सिद्ध हुआ है। यह कार्य समय और परिश्रम की दृष्टि से अनन्त व्ययसाध्य है किन्तु अपरिहार्य है।

बारहवां सिद्धान्त –

पारिभाषिक शब्द ऐसे होने चाहिए जो केवल हिन्दी में ही नहीं किन्तु भारतवर्ष की अन्य भाषाओं में भी प्रयोग किए जा सकें।

हमारा सौभाग्य है कि प्राचीनकाल से परिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सर्वत्र भारतवर्ष में समानता और एकरूपता रही है। आयुर्वेद के कारण पौधों के नाम, औषधों और रोगों के नाम, लंका से नेपाल तक विद्वानों में एक ही समान है। ज्योतिष, दर्शन, पुराण, रामायण, महाभारत, समस्त भारत की सम्पत्ति हैं। वैष्णव, शैव, शाक्त, तन्त्र, काव्य, हमारे अनन्य सखा हैं। यदि हम भारतीय भाषाओं के शब्दकोषों पर दृष्टि डालें तो मलयालम, बंगला, असमिया और उड़िया में 80 प्रतिशत शब्द संस्कृत के दिखाई पड़ते हैं। कन्नड़ तेलुगु और हिन्दी में भी संस्कृत शब्द संख्या 80 प्रतिशत है। इसी प्रकार गुजराती और मराठी में। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित् बृहत् तमिल कोश के सात भागों में संस्कृत के 40,000 शब्द विद्यमान हैं।

उत्तर की भाषाएं संस्कृत की पुत्रियां है। इसलिए उनके जो बहुत से सामान्य शब्द भी संस्कृत से आए हुए हैं उनको तद्भव कहते हैं। जैसे करना, जाना, खेलना, हंसना, देना, पाना आदि –करण, यान, क्रीडन, हसन, दान, प्रापण, आदि से बने हैं। सामान्य जन–भाषा में इन्हीं शब्दों का अधिक प्रयोग होता है। किन्तु जिस समय पारिभाषिक विषयों का अध्ययन होता है उस समय शुद्ध संस्कृत अथवा तत्सम शब्दों का प्रयोग होता है। पाठशाला में प्रवेश करते ही बालक वर्णमाला, स्वर, व्यंजन, कण्ठ्य, तालव्य, संयुक्त, वर्ण, भूगोल, गणित, इतिहास, त्रिकोण, चतुष्कोण, षट्कोण इत्यादि तत्सम शब्दों को सीखना आरम्भ करता है। विद्यार्थी जितना ऊंचा जाएगा उसको उतने ही अधिक तत्सम शब्द मिलते जाएंगे। कविता, निबन्ध, समालोचना, शिल्प, कला

आदि के क्षेत्रों में भी उत्तरोत्तर तत्सम शब्दों की वृद्धि होती जाती है।

अब दक्षिणी भाषाओं की ओर चलें। इनमें तद्भव शब्दों की संख्या उत्तर की अपेक्षा थोड़ी है किन्तु शब्दों की प्रचुरता में विशेष भेद नहीं। मलयालम में तो संस्कृत के केवल शब्दों का ही नहीं अपितु लम्बे–लम्बे समासों का भी प्रयोग होता है।

हमारा क्षेत्र पारिभाषिक है। इसमें हम यदि ऐसे शब्द लें जो उत्तर और दक्षिण दोनों में प्रयोग हो सकें तो अनायास ही तत्सम शब्द सामने आते है। इन्हीं के आधार पर हमारी पारिभाषिक शब्दावली एक बन सकती है।

तेरहवां सिद्धान्त –

पारिभाषिक शब्दकोष सामान्य शब्दकोष का सहायक और पूरक है। पारिभाषिक शब्द सामान्य जन–शब्दों के प्रयोग में बाधक नहीं होते। सामान्य जनता अपने सामान्य कार्यों को करने के लिए कोष का प्रयोग नहीं करती और न करेंगे। यह बात प्रत्येक विद्वान् के मन में अंकित कर देना चाहिए। यह सच है कि विद्वानों के शब्द धीरे–धीरे जनता में फैलते हैं और जनता के शब्द विद्वानों में आते हैं तथापि दोनों में संघर्ष हो, ऐसी बात नहीं।

पश्चिमी भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी डेढ़ सौ वर्ष पीछे है। इस अवधि में पश्चिमी भाषाओं ने छः सौ वैज्ञानिक विषयों की रचना की और उनके लिए लाखों शब्दों का निर्माण किया। इनका स्रोत लैटिन और ग्रीक भाषाएं हैं।

नए विषयों के लिए हमको भी नए शब्दों के निर्माण की आवश्यकता है। हमारे नए शब्द पूर्व–परिचित साहित्यिक उपसर्गों, धातुओं और प्रत्ययों से बने हुए होने के कारण सरल और व्याख्यागम्य होंगे। हमारी जनता को वैज्ञानिक अध्ययन के लिए विदेशी भाषाएं पढ़ने की आवश्यकता न रहेगी। हमारे बालकों के बहुमूल्य जीवन–काल के 5,7 वर्ष बच जाएंगे। Monocotyledonous के स्थान में एकबीजपत्र, Opuntia के स्थान में नागफण, orology के स्थान में पर्वत–विज्ञान विषय समझने के लिए कहीं अधिक सरल और सहायक है। अंग्रेजी शब्दावली कभी भी हमारी शिक्षा का माध्यम नहीं बन सकती।

विदेशी भाषाओं का अध्ययन केवल अन्वेषण ाकर्ताओं के लिए अनिवार्य होगा। जो समय इस प्रकार बचेगा वह ज्ञान और विज्ञान के उपार्जन में लग सकेगा। ऊंचे से ऊंचे विचार तथा आविष्कार हिन्दी जानने वाली जनता तक पहुंच सकेंगे।

आचार्य जी अंत में लिखते हैं कि जो सिद्धान्त हमने ऊपर दर्शाए हैं उनका एकमात्र प्रयोजन यह है कि प्रत्येक विदेशी शब्द के लिए भारतीय शब्द का निर्माण हो सके और उनके द्वारा हम विज्ञान को शीघ्रातिशीघ्र पूर्णरूपेण आत्मसात् कर सकें।

महात्मा गांधी कहते थे "जन-भाषा में शिक्षा से ही संभव है समुन्नति"

महात्मा गांधी ने 1909 में **'हिन्द स्वराज'** पुस्तक में भावी भारतीय राष्ट्र के स्वरूप की प्रस्तुति में जन भाषा (भारतीय भाषा) के महत्व का उल्लेख करते हुए जापान का उदाहरण दिया है कि जापान ने मातृभाषा में शिक्षा के द्वारा हर क्षेत्र में प्रगति की, उनके हर काम मे नयापन दिखाई देता है, और दुनिया जापानियों का काम अचरजभरी आँखों से देखती है।

विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने की पद्धति से बहुत हानि होती है। अंग्रेजी भाषा पर अधिकार करने में ही हमारी अधिकांश मानसिक शक्ति खर्च हो जाए, यह बहुत ही अवांछनीय है।

आज भारत में हम रट-पिट कर औसत बौद्धि वाले इंजीनियर और डॉक्टर पैदा कर रहे हैं, खोजकर्ता वैज्ञानिक, मौलिक चिंतक और दार्शनिक नहीं पैदा कर पा रहे हैं। भारत की ज्यादातर आबादी नवीनतम ज्ञान विज्ञान से वंचित है, उसके आत्मविश्वास को हिला कर रख दिया है।

जो किसी विदेशी भाषा के दम पर एक अन्यायपूर्ण सत्ता संरचना में हर जगह छाए हुए हैं, उनकी मौलिकता नष्ट हो चुकी है। हमारी पूरी की पूरी पीढ़ी नकलची बन रही है, अधकचरी बन रही है।